अभिज्ञानशकुन्तल-बंगालीवाचना की मौलिकता के समर्थक नवीन प्रमाण

वसन्तकुमार म. भट्ट

पाण्डुलिपीनां परस्परं प्राचीनतानिर्धारणक्रमे नवं पन्थानं प्रदर्शयति एषः लेखः। अभिज्ञानशाकुन्तलस्य उपलभ्यमानानि वाचनानि भृशं परिशील्य बङ्गवाचनस्य मौलिकतासमर्थकं प्रमाणमुस्थाप्यते। "सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रः मयि विरसः संवृत्तः" इति, "ततोऽनुकम्पिता भवेयम्" इति च शाकुन्तलं वचनमुद्धृत्य बङ्गवाचनात् तस्य प्राचीनतां निश्चिनोति गवेषकः।

भूमिका

इसमें दो मत नहीं है कि महाकवि कालिदास का अभिज्ञाश(शा)कुन्तल नाटक सर्वश्रेष्ठ है। लेकिन इस नाटक के शीर्षक से लेकर अन्तिम भरतवाक्य पर्यन्त का जो पाठ पाण्डुलिपियों में संचरित हुआ है वह नाना प्रकार का दिखाई देता है। अतः इस नाट्यकृति के किसी भी वाक्य को लेकर यह पूछा जाए कि–क्या यह वाक्य कालिदास ने लिखा था? तो इतना निश्चित है कि इसमें दो मत अवश्य सामने आयेंगे।[१]

इस नाट्यकृति का ''समीक्षित पाठसम्पादन'' प्रस्तुत करने का दावा अनेक गणमान्य विद्वानों ने किया है।[२] लेकिन इनमें से किसी का भी समीक्षित पाठ सर्वसम्मत नहीं हुआ है। आज की प्रवर्तमान स्थिति यही है कि कालिदास के अभिज्ञानश(शा)कुन्तल नाटक का पाठ कम से कम पाँच वाचनाओं में प्रवहमान दिखाई देता है। १. देवनागरी-वाचना, २. दाक्षिणात्य-वाचना, ३. काश्मीरी-वाचना, ४. मैथिली-वाचना एवं ५. बंगाली-वाचना। इन पाँचों वाचनाओं में जो पाठ-वैविध्य है उसको हम मुख्य रूप से दो परम्पराओं में विभक्त कर सकते हैं:- (क) लघुपाठ परम्परा और (ख) बृहत् पाठपरम्परा। प्रथम परम्परा

में इस नाटक का शीर्षक-अभिज्ञानशाकुन्तलम है, और द्वितीय परम्परा में–अभिज्ञानशकुन्तल है। पूर्वोक्त पञ्चविध वाचनाओं में से प्रथम दो वाचनायें लघुपाठ परम्परा वाली है, तथा अन्तिम दो वाचनायें बृहत् पाठपरम्परा वाली हैं। लेकिन जो काश्मीरी की तृतीय वाचना है, वह न अतिलघु है और न अतिबृहत् है–मध्यम विस्तारवाली है–ऐसा डॉ० एस० के० बेलवालकरजी का मत है। फिर भी यह वाचना बंगाली-वाचना की ओर थोड़ा झुकाव रखने वाली तो है ही–यह भी ज्ञातव्य है।

इस तरह अभिज्ञानश(शा)कुन्तलम नाटक का पाठ मुख्य रूप से दो–लघुपाठ और बृहत्पाठ–परम्पराओं में संचरित हुआ है। किन्तु यह नाटक एककर्तृक रचना है, इसलिए एक प्रश्न तो उठेगा ही कि दोनों तरह का अभिज्ञान-श(शा)कुन्तल तो कालिदास द्वारा नहीं लिखा हो सकता। अर्थात् हमें यह ढूँढना ही चाहिये कि इस नाटक की दो तरह की पाठपरम्परा में से किस परम्परा का पाठ मौलिक हो सकता है। तार्किक दृष्टि से सोचा जाय तो यहाँ दोनों तरह की सम्भावनायें हो सकती हैए जैसा कि - १. लघुपाठ में कालान्तर में (नाट्यप्रयोग के दौरान) कुछ अंश नये जोड़े गये होंगे, ऐसे प्रक्षिप्तांश के कारण शाकुन्तल का बृहत् पाठ तैयार हुआ होगा अथवा २. महाकवि के द्वारा ही प्रणीत बृहत्पाठ में से कुछ अंश हटा कर (रंगभूमि के अनुरूप, सीमित समय में प्रस्तुत होने वाला) नाटक का संक्षिप्त (लघु) पाठ बाद में तैयार किया गया होगा। अतः यह कहना मुश्किल है कि कालिदास ने ही अपने हाथ से लिखा हो, ऐसा (मौलिक) पाठ कौन सी परम्परा में सुरक्षित रहा होगा? यह प्रश्न निरतिशय विवादास्पद होते हुए भी विद्वानों के लिये अनुपेक्ष्य है। इसीलिये जब तक इस प्रश्न का बुद्धिग्राह्य समाधान न मिले तब तक विद्वज्जगत् में इस दिशा के प्रयास जारी रहने चाहिये और किसी भी कृति के पाठ की विश्वसनीयता जब तक सिद्ध नहीं होती है तब तक उसके साहित्यिक गुण-दोष की चर्चा करना भी सर्वथा व्यर्थ है।

१-१. नाटक जैसी जो एककर्तृक रचना होती है उसका पाठ जब प्रतिलिपिकरण के द्वारा पाण्डुलिपियों में संचरित होता है तो उसमें अनेक पाठभेद (पाठान्तर), अपपाठ, प्रक्षेप, श्लोकों की आनुक्रमिकता में विभेद, पात्रसृष्टि के नामों में बहुविधता तथा उक्ति के वक्ताओं में परिवर्तनादि दिखाई देते हैं। ऐसी स्थिति में जो पाठालोचना करके समीक्षित पाठसम्पादन तैयार किया जाता है, उसमें दो तरह की सम्भावनाओं की परीक्षा की जाती हैः–(क) अनुलेखनीय सम्भावना, (ख) तथा आन्तरिक सम्भावना। उदाहरण के रूप में देखें तो प्रो. श्री रेवाप्रसाद

जी ने कालिदास के समय में प्रचलित ब्राह्मीलिपि के अक्षरों के आकार को ध्यान में लेते हुए, शाकुन्तल के नान्दी-पद्य में 'प्रपन्नः' और 'प्रसन्नः' – जैसे दोनों उपलब्ध पाठान्तरों को अमान्य घोषित करके, 'प्रपन्नान्' जैसे नये पाठ की सम्भावना प्रस्तुत की है। इसको अनुलेखनीय सम्भावना कहते हैं।[३] दूसरी ओर, डॉ॰ एस. के. बेलवालकरजी ने **"निसर्ग-कन्या शकुन्तला"** शीर्षकवाले आलेख में जो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, वे आन्तरिक सम्भावना के ध्यानास्पद उदाहरण हैं (कालिदास-ग्रन्थावली (हिन्दी अनुवाद के साथ), १९५३)[४]।।

१-२. विद्वज्जगत् में अभिज्ञानशाकुन्तल के श्रद्धेय पाठ के रूप में बहुशः देवनागरी वाचना का लघुपाठ ही प्रचार में हैं (तथा दाक्षिणात्य वाचना का पाठ बहुशः देवनागरी वाचना के साथ साम्य रखता है। अतः उसका स्वतन्त्र मूल्य कम है) और देवनागरी वाचना के पाठ में ही व्यंजना का आधिक्य है तथा बंगाली वाचना के पाठ में स्थूल शृङ्गारिक दृश्यावली ज्यादा है– ऐसा अनेक विद्वानों का मन्तव्य है।[५] दूसरी ओर, देवनागरी वाचना का पाठ (रंगभूमि के अनुरूप बनाने के लिये) संक्षिप्त किया गया है – ऐसा कहने वालों में सर्वप्रथम कोलकाता के प्रॉफेसर डॉ. श्री दिलीपकुमार कांजीलाल (झंदरपसंसए १९८०) का प्रयास अतीव ध्यानास्पद है। उन्होंने अनेकानेक प्रमाणों से यह प्रस्थापित किया है कि बंगाली वाचना में संचरित हुआ पाठ ही सर्वाधिक श्रद्धेय है एवं प्राचीनतम भी है (दुर्भाग्य से उनके ग्रन्थ का प्रचार देश के कौने-कौने में नहीं हुआ है)। किन्तु जिन सन्दर्भों की ओर सम्माननीय विद्वान् डॉ. श्री कांजीलाल का भी ध्यान नहीं गया है और जो बंगाली पाठ की मौलिकता के समर्थक बन सकते हैं- ऐसे सन्दर्भों की चर्चा यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।।

२. अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक के वस्तुग्रथन में रूप – प्रतिरूप (दृश्य-प्रतिदृश्य) की पद्धति दिखाई दे रही है। जैसा कि- प्रथम अङ्क में शिकारी दुष्यन्त का प्रवेश होता है, तो सप्तम अङ्क में सिंहशावक को सताने वाला सर्वदमन भरत का दृश्य आता है। तृतीय अङ्क में विटपान्तरित दुष्यन्त शाकुन्तला की मदनावस्था को सुनता है (शाकु. ३/८ के बाद) तब बोलता है – श्रुतं श्रोतव्यम्। फिर वही दुष्यन्त पंचमाङ्क में शाकुन्तला को ताना मारता सुनाई पड़ता है कि- श्रोतव्यम् इदानीं संवृत्तम् (शाकु. ५/२२ के उपर)। उसी तरह से प्रथमाङ्क में भ्रमरबाधा प्रसंग में दुष्यन्त भ्रमर के प्रतिस्पर्धी के रूप में "वयं तत्त्वान्वेषान् मधुकर, हतास्त्वं खलु कृती" (शाकु. १/२०) कहता है। वही दुष्यन्त षष्ठाङ्क में, चित्रफलक में भ्रमरबाधा प्रसंग का फिर से निरूपण करता है। तब भ्रमर को कहता है कि–बिम्बाधरं स्पृशसि चेद् भ्रमर, प्रियायास्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम्

(शाकु. ६/२०)। इस तरह से, इस कृति में आदि से लेकर अन्त तक रूप - प्रतिरूप की विधा से नाट्यकार्य प्रवर्तित किया गया है। इस तरह की निरूपण शैली को आधार बना कर सोचा जाय तो, षष्ठाङ्क में (प्रतिरूप में) निरूपित अन्य प्रसंगों का मूल रूप देवनागरी वाचना के तृतीय अङ्क के पाठ में होना ही चाहिये। लेकिन वे नहीं हैं। अतः यह शङ्का दृढ हो कर सामने आती है कि मूल बंगाली वाचना वाले बृहत् पाठ का देवनागरी वाचना में संक्षेप किया गया है। इस सन्दर्भ में बंगाली वाचना में तृतीयाङ्क का जो बृहत् पाठ (कम से कम १२वीं शताब्दी से संचरित हो कर) हमारे पास आया है (Kanjilal, १९८०)[६] उसकी परीक्षा करने के लिये देवनागरी वाचना के षष्ठाङ्क का तुलनात्मक अभ्यास करना जरूरी है।

२-१. षष्ठाङ्क में, विरही दुष्यन्त चित्रफलक में शकुन्तला का चित्र बनाता है। वह विदूषक को कहता है कि मैं इस चित्र में शकुन्तला का प्रसाधन भी चित्रित करना चाहता हूँ। विदूषक पूछता है:–क्या है वो प्रसाधन? तब दुष्यन्त कहता है कि- कृतं न कर्णापितबन्धनं सखे, शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम् (शाकु. ६/१८)। "शकुन्तला के कर्ण में एक शिरीष-पुष्प लगाना है, जिसके केसर गण्डस्थल के भाग पर लटकते हो," शकुन्तला के ऐसे कोई प्रसाधन का उल्लेख प्रथमाङ्क में तो कहीं पर नहीं है। केवल बंगाली वाचना के (बृहत् पाठ वाले) तृतीय अङ्क में इसका निर्देश है:– शकुन्तला कहती है कि– ण दाव णं पेक्खामि। पवणुकम्पिणा कण्णप्पलरेणुणा कलुसीकिदा में दिट्ठी। (न तावत् एनम् प्रेक्षे। पवनोत्पलरेणुना कलुषीकृता में दृष्टिः)। यहाँ ऐसा स्पष्ट उल्लेख है कि शकुन्तला अपने कानों में उत्पलादि पुष्पों को प्रसाधन के रूप में लगाती थी। गान्धर्व-विवाह वर्णित करने वाले तृतीयाङ्क में दुष्यन्त ने शकुन्तला के जो प्रसाधन देखे होंगे उसे तो वह कैसे भूलेगा? अतः यह मानना होगा कि बंगाली वाचना के (तृतीयाङ्क के) बृहत्पाठ में कांट-छांट करके, देवनागरी वाचना (के तृतीयाङ्क) का संक्षिप्त पाठ बनाया गया होगा।

२-२. दुष्यन्त ने चित्रफलक में दो सहेलियों के साथ रह रही शकुन्तला का चित्र बना लिया है। तब विदूषक पूछता है कि- भोः, अपरं किमत्र लिखितव्यम्। (अब इस में और क्या चित्रित करना है?) इसके जवाब में दुष्यन्त ने प्रेमाविष्ट होकर एक श्लोक प्रस्तुत किया है:– (जो शकुन्तला की सभी वाचनाओं में सुरक्षित रहा है)

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी, पादास्ताम् अभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः। शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निमातुम् इच्छाम्यधः, शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्।। ६/१७।।

अब सोचना यह है कि धीवरप्रसंग के बाद विरही दुष्यन्त को शकुन्तला का स्मरण जब पूर्ण रूप से हो गया है तब पूर्वानुभूत (प्रथम एवं तृतीय अङ्क के) कौन-कौन से प्रसंगों को चुन-चुन कर वह चित्राङ्कन करना चाहता है (राघवभट्ट, २००६)।[७] उपर्युक्त श्लोक में जो-जो कहा गया है उसका ध्यान से परीक्षण करने की आवश्यकता है।

१. दुष्यन्त कण्वाश्रम के पास बहती हुई मालिनी नदी को याद कर रहा है। जिसकी सिकता में बैठे हुए हंस-मिथुन को वह चित्रित करना चाहता है।

२. मालिनी की पार्श्वभूमि में स्थित पार्वती के पिता अर्थात् हिमालय को वह चित्रित करना चाहता है, जिसकी निश्रा में हिरणों के यूथ बैठे हों।

३. जहाँ वृक्ष की शाखाओं पर ऋषि-मुनियों के अथवा शकुन्तला के वल्कल सुखाने के लिये टाँगे गये हों और उस वृक्ष की छाया में, नीचे दो मृग (जिसमें एक मृग हो और दूसरी मृगी हो) खड़े हों- ऐसा वह चित्रित करना चाहता है। यहाँ मालिनी, हंस, हिमालय, हरिण और वल्कल-वस्त्रों का उल्लेख तो (प्रथम अङ्क के कण्वाश्रम के) पूर्वदृष्ट स्थल का ही स्मरण है ऐसा तुरन्त समझ में आता है। किन्तु-

४. यहाँ एक प्रश्न उठता है कि मृग के शृंग पर अपना वाम-नेत्र खुजलाती हुई (कण्डूयमाना) मृगी चित्रित करने की भावना दुष्यन्त के मन में कैसे/कहा/से पैदा हुई होगी।

यहाँ चतुर्थ बिन्दु में जो प्रश्न उपस्थित किया गया है उसका उत्तर देवनागरी वाचना के संक्षिप्त पाठ में मिलता ही नहीं है। उसका उत्तर तो केवल बंगाली वाचना के पाठ को देखने पर ही मिलता है। बंगाली वाचना वाले अभिज्ञानशकुन्तला के तृतीयाङ्क में, जैसा पहले बताया गया है कि शकुन्तला ने अपने कर्ण के ऊपर उत्पल पुष्प को आरोपित किया था और जो शकुन्तला के मुख पर गण्डभाग में लटक रहा था, (पिशेल, १९२२ (द्वितीयावृत्ति))[८] उसी उत्पलपुष्प का परागरज (परिमल) पवन के कारण शकुन्तला की आँख में जा कर दृष्टि को कलुषित कर देती है- ऐसा (बंगाली वाचना के) तृतीय अङ्क में कहा गया है। इस प्रसंग के अनुसन्धान में दुष्यन्त ने वहाँ कहा था कि मैं अपने वदन-मारुत से तुम्हारी दृष्टि को स्वच्छ कर देने को तैयार हूँ।[९] लेकिन शकुन्तला को दुष्यन्त ने इसी का प्रतिदृश्य खड़ा करते हुए, कण्डूयमाना मृगी को चित्र में निरूपित करने की इच्छा व्यक्त की है। (यहाँ पर दावप्यत्रारण्यकौ - बोल कर दुष्यन्त ने एकदा जो ताना मारा था, उसका प्रायश्चित भी है।

दुष्यन्त स्वयं एक आरण्यक मृग बनकर खड़ा रहने को तैयार है– ऐसा सूचना देने के लिये कण्डूयमाना मृगी का चित्र बनाने की चाहत उसके दिल में पैदा हुई है) और यह बात तो सर्वविदित है कि इस नाटक में सर्वत्र हरिण को ही शकुन्तला का प्रतीक बनाकर प्रयुक्त किया गया है। इस तरह देवनागरी वाचना के षष्ठाङ्क के सभी निर्देशों का पूर्व रूप बंगाली वाचना वाले (तृतीयाङ्क के) पाठ में ही उपलब्ध होते हैं, अतः बंगाली वाचना के बृहत् पाठ को प्रक्षिप्त न करके, उसे मौलिक मानने को हम बाध्य हो जाते हैं।

३. उपर्युक्त सन्दर्भ ऐसे हैं कि जिसमें देवनागरी, दाक्षिणात्य, काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली - सभी वाचनाओं में समान रूप से **षष्ठाङ्क में आये हुए श्लोक को आधार बनाकर** बंगाली वाचना के तृतीयाङ्क के प्रलम्ब पाठ की मौलिकता का समर्थन किया गया है। लेकिन देवनागरी, दाक्षिणात्य, काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली वाचना के **तृतीयाङ्क के अन्त भाग में समान रूप से अब एक श्लोक** (देवनागरी का ३/२३) ऐसा दिखाया जाता है कि जिसमें आये हुए एक शब्द का समर्थन केवल बंगाली वाचना का (तृतीयाङ्क का प्रक्षिप्त माना गया बृहत्) पाठ ही कर सकता है। अब ऐसे आन्तरिक प्रमाण के रूप में सिद्ध होने वाले श्लोक की चर्चा की जा रही है:–

३-१. देवनागरी (इत्यादि) वाचना के शाकुन्तल में, तृतीयाङ्क के अन्त में, गौतमी के साथ शकुन्लता चली जाती है। तत्पश्चात् दुष्यन्त प्रियापरिभुक्तमुक्त लतावलय में कुछ क्षणों के लिये खड़ा रहता है। वह यहाँ एक श्लोक बोलता है:–

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं, क्लान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः। हस्ताद् भ्रष्टम् इदं **बिसाभरणम्** इत्यासज्यमानेक्षणो, निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहाच्छक्रोमि शून्याद् अपि।।

(देवनागरी वाचना के शाकुन्तला में- ३/२३) इस में १. शकुन्तला की पुष्पमयी शय्या, २. उसने नलिनीपत्र पर लिखा मन्मथलेख तथा ३. उसके हाथ से निकला हुआ कोई एक बिसाभरण (वलय)- इन तीन चीजों का स्पष्ट निर्देश है। लेकिन, देवनागरी, दाक्षिणात्य एवं काश्मीरी वाचना के तृतीयाङ्क के पाठ में कहीं पर भी शकुन्तला ने अपने हाथ में बिसाभरण धारण किया है, ऐसा नहीं कहा गया है। ऐसा उल्लेख तो एकमात्र बंगाली (एवं मैथिली) वाचना में ही प्राप्त होता है। बंगाली वाचना का निम्नोद्धृत अंश पठनीय है:–

राजा - सम्प्रति प्रियाशून्ये किमस्मिन् करोमि। (अग्रतोऽवलोक्य) हन्त, व्याहतं गमनम्।

मणिबन्धनगलितम् इदं संक्रान्तोशीरपरिमलं तस्याः।
हृदयस्य निगडमिव मे मृणालवलयं स्थितं पुरतः।।

(३/३१), (सबहुमानम् आदत्ते)

शकुन्तला- (हस्तं विलोक्य) अम्मो, दोब्बल्लसिढिलदाए परिब्भट्ठं पि मुणालवलअं मए ण परिण्णादं। (अहो, दौर्बल्यशिथिलतया परिभ्रष्टमपि **मृणालवलयं** मया न परिज्ञातम्)।

राजा - (मृणालवलयमुरसि निक्षिप्य) अहो स्पर्शः।

अनेन **लीलाभरेणन** ते प्रिये विहाय कान्तं भुजमत्र तिष्ठता। जनः समाश्वासित एष दुःखभागचेतनेनापि सता, न तु त्वया।। (अभिज्ञानशकुन्तम् ३/३२, रिचार्ड पिशेल की बंगाली वाचनावाली आवृत्ति, पृ. ३८)।

दुष्यन्त की यह उक्ति सुनने के बाद शकुन्तला फिर से लतामण्डप में उस वलय को वापस ले लेने के निमित्त प्रवेश करती है। यहाँ से शकुन्तला ने लीलाभरण के रूप में हाथ में कोई वलय/लीलाभरण पहना था, उसका स्पष्ट शब्दों में उल्लेख है। इस प्रसंग में (शकुन्तला के शब्दों में) जो वलय/(और दुष्यन्त के शब्दों में जो) लीलाभरण का निर्देश है, उसको देवनागरी वाचना के पूर्वोक्त (शाकु. ३/२३) श्लोक की "हस्ताद् भ्रष्टम् बिसाभरणम्" पंक्ति मे रखी गई है। अन्यथा देवनागरी (इत्यादि) वाचना के तृतीयाङ्क के पाठ में कहीं पर भी शकुन्तला ने अपने हाथ में कोई लीलाभरण, बिसाभरण, वलय जैसा कुछ पहना हो ऐसा तनिकसा भी निर्देश नहीं है। अतः बंगाली पाठ की मौलिकता के बारे में अधिक विश्वसनीयता दिखाई देती है।

बंगाली वाचना के शकुन्तला नाटक में तृतीयाङ्क में कुल मिला ४१ या ४२ श्लोकों का समुदाय है। उसके सामने देवनागरी वाचना और दाक्षिणात्य वाचना वाले शाकुन्तल नाटक के तृतीय अङ्क में केवल २३ या २४ श्लोक प्राप्त होते हैं। अतः यदि किसी अज्ञात रंगकर्मी ने बंगाली वाचना के बृहत् पाठ में कांट-छांट करके, देवनागरी वाचना का संक्षिप्त पाठ बनाया होगा तो उसका कोई न कोई सबूत देवनागरी वाचना के पाठ में ही अनजान में भी रहा होगा– ऐसा अनुमान करने को हमारा मन उद्यत होता है। उस अनुमान को दृढीभूत करने वाला यह (३/२३) श्लोक (संक्षिप्त की गई) देवनागरी वाचना मे सुरक्षित रह गया है, जो

हमारे लिये एक अकाट्य आन्तरिक प्रमाण है। सारभूत बात यही है कि १. पुष्पमयी शय्या और २. मन्मथलेख के साथ ३. जो बिसाभरण का निर्देश देवनागरी वाचना के पाठ में है वह कहाँ से आया उसका उत्तर केवल बंगाली वाचना में ही है।

४. बंगाली वाचना के तृतीयाङ्क में प्रक्षिप्तांश है- ऐसा मानने वाले विद्वानों को यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि तृतीयाङ्क के प्रसंगों को वर्णित करने के लिये कवि ने कितना कालावधि निर्दिष्ट किया है? क्योंकि देवनागरी (इत्यादि सभी) वाचना वाले तृतीयाङ्क के पाठ में निम्नोक्त तीन वाक्य तो सर्वत्र एक समान रूप से उपलब्ध होते हैं:- (१) अङ्क के आरम्भ में प्रविष्ट होते ही, (तब कुसुमशरत्वम्..... श्लोक के बाद) दुष्यन्त कहता है कि- (सूर्यम् अवलोक्य) इमाम् **उग्रातपवेलां** लतावलयवत्सु मालिनीतीरेषु ससखीजना शकुन्तला गमयति। अर्थात् अङ्क का आरम्भ उग्र आतपवाली दुपहर की वेला में हो रहा है। (२) मृगपोतक को उनकी माता के साथ संयोजित करने के बहाने जब दोनों सहेलियाँ चली जाती हैं और रंगभूमि पर दुष्यन्त-शकुन्तला अकेले रह जाते हैं, तब दुष्यन्त ने शकुन्तला से कहा कि- **सुन्दरि, अनिर्वाणो दिवसः।** (श्लोक ३/१८ के नीचे) हे सुन्दरी, अभी दिवस पूरा नहीं हुआ है। (३) लेकिन थोड़ी ही देर में गौतमी वहाँ आ पहुँचती है और कहती है कि- **वच्छे, परिणदो दिअहो।** एहि, उडजं एव गच्छम्ह। (वत्से, परिणतो दिवसः। एहि, उटजम् एव गच्छामः।) (श्लोक ३/२२ के ऊपर)।। यदि ये तीनों वाक्य सार्वत्रिक रूप से सभी वाचना में है, तो स्पष्ट है कि श्लोक १८ और २२ के बीच में जो अपेक्षित संवाद हो सकते हैं, उसमें कुछ कांट-छांट अवश्य हुई होगी। बंगाली वाचना वाले पाठ में दुष्यन्त और शकुन्तला के आपसी संवादों का जो है वही पाठ केवल "अनिर्वाणो दिवसः।" तथा "वत्से, परिणतो दिवसः।"- के बीच के अपेक्षित काल का समाधान कर सकते हैं। इतने सुव्याप्त संवादों के दौरान ही दोपहर से लेकर शाम ढलने तक का काल व्यतीत हुआ होगा ऐसा समर्थन बंगाली पाठ ही करता है। संक्षेप में, महाकवि कालिदास ने स्वयं उपर्युक्त तीन वाक्यों से जो समय-मर्यादा का प्रकट निर्देश किया है उसका तार्किक दृष्टि से औचित्य सिद्ध करना है तो वह बंगाली वाचना के बृहत् पाठ से ही सिद्ध हो सकता है- यह निःशङ्क है (ज्ञंदरपसंसए १९८०)[११]।।

४-१. देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचना वाले (लघु) पाठ में गान्धर्व-विवाह नामक तृतीयाङ्क का आलेखन संयमित एवं व्यंजनापूर्ण होते हुए भी उसमें एक स्थान ऐसा है जो प्रथम दृष्टि में ही अनुचित लगता है:- 'चक्रवाकवधूके,

आमन्त्रयस्व प्रियसहचरम्। उपस्थिता रजनी।' ऐसा नेपथ्य से कहा जाता है। इसको सुनते ही शकुन्तला दुष्यन्त को सावधान करती है कि मेरे शरीरवृत्तान्त को जानने के लिये गौतमी आ रही है। तुम वृक्ष के पीछे छिप कर रहो। फिर लिखित पाठ में एक रंगसूचना है:–"ततः प्रविशति पात्रहस्ता तापसी, सख्यौ च"। दोनों सखियाँ "इत इत आर्या गौतमी" ऐसा बोलती हुई गौतमी को प्रवेश कराती हैं। बाद में वह पूछती है कि क्या अब तेरे शरीर का संताप कुछ कम हुआ है। लो, इस शान्तिदर्भोदक से तेरी बाधायें हट जायेगी इत्यादि। फिर तीनों पात्र, (गौतमी, अनसूया और प्रियंवदा) शकुन्तला को लेकर रंगभूमि से निकल जाती हैं। यहाँ प्रश्न उठता है कि जिन दोनों सखियों ने नायक-नायिका को रतिक्रीडा के अनुकूल विश्रब्ध स्थान में एकान्त देने के लिये, मृगबाल को अपनी माता के साथ संयोजन करवाने- को बहाना बनाकर, अभी-अभी कुछ ही क्षणों कर पहले लतावलय से बिदा ली थी, क्या वही दोनों सखियाँ आर्या गौतमी को रास्ता दिखाती हुई वहाँ उपस्थित हो जाती हैं। यह तो सर्वथा अनुचित ही है। यद्यपि यह बात अलग है कि किसी भी विद्वान् ने इस अनौचित्य की ओर अंगुली नहीं उठाई है। लेकिन यह अनौचित्य ध्यातव्य जरूर है।

अब इसी सन्दर्भ को लेकर बंगाली एवं मैथिली वाचना के पाठ का परीक्षण किया जाय तो वहाँ उपर्युक्त अनौचित्य तनिक सा भी नहीं है। जैसा कि पहले कहा गया है- बंगाली पाठ में "अनिर्वाणो दिवसः" से लेकर "वत्से, परिणतो दिवसः"– के बीच नायक-नायिका का जो विस्तृत सहचार दिखाया गया है, उसमें जिस क्षण में गौतमी का प्रवेश होता है, उस समय वह अकेली होती है। शान्त्युदक प्रसारित करते हुए वह देखती है कि अस्वस्थ शकुन्तला को देवताओं के सहारे अकेली छोड़ कर प्रियंवदा-अनसूया वहाँ से चली गई हैं। तब शकुन्तला को कहना पड़ता है कि वे दोनों अभी-अभी मालिनी नदी पर गई हैं, (पिशेल, १९२२ (द्वितीयावृत्ति))[१२]। यहाँ दोनों सखियों के साथ में गौतमी उपस्थित नहीं होती है, अर्थात् यहाँ जो पाठ दिखाई देता है, वह पूर्वापर सन्दर्भ में बिल्कुल सुसंगत और औचित्यपूर्ण है। अतः बंगाली लिपि में लिखित अभिज्ञानशकुन्तल की पाण्डुलिपियों में जो बृहत्पाठ-परम्परा संचरित हुआ है, वही मौलिक हो सकता है ऐसी सम्भावना दृढ़तर होकर सामने आती है।

४-२. अभिज्ञानश(शा)कुन्तल की सभी वाचनाओं के षष्ठाङ्क में विरही दुष्यन्त के मुख से अन्तःपुर में बार-बार गोत्रस्खलन होने से दुष्यन्त शरमिन्दा हो जाता है– ऐसा निर्देश है 'दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचिताम् अन्तःपुरेभ्यो यदा, गोत्रेषु स्खलितस्तदा भवति च व्रीडाविलक्षश्चिरम्।।' (शाकु. ६/५). अब गान्धर्व-विवाह

को वर्णित करने वाले (देवनागरी वाचना के) तृतीयाङ्क में दुष्यन्त - शकुन्तला का जो मिलन है वह तो कुछ दो-पाँच क्षणों का ही वर्णित किया है। किन्तु बंगाली वाचना के तृतीयाङ्क के पाठ में, शकुन्तला ने दुष्यन्त को आर्यपुत्र जैसे शब्द से सम्बोधित किया है और दुष्यन्त ने शकुन्तला को जीवितेश्वरी शब्द से उल्लेख किया है। ऐसे परस्पराश्लिष्ट। परस्पराश्रित दाम्पत्य का निरूपण होने के बाद यदि गोलस्खलन का उल्लेख किया जाय तो वह ज्यादा प्रतीतिकर सिद्ध हो सकता है।

४-३. देवनागरी वाचना के षष्ठाङ्क में वर्णित प्रसंगों का बंगाली वाचना के तृतीयाङ्क के पाठ में प्रदर्शित प्रसंगों के साथ एक तरह का अंतर सम्बन्ध दिखाई देता है। इसी बात का समर्थन करने वाला षष्ठाङ्क का एक अन्य सन्दर्भ भी यहाँ उल्लेखनीय है:-देवनागरी (इत्यादि सभी) वाचनाओं में, विरही दुष्यन्त के सामने पत्रारूढ़ पौरकार्य प्रस्तुत किया जाता है। जिसमें एक समुद्रव्यवहारी सार्थवाह धनमित्र अनपत्य मर गया है-ऐसी बात कही जाती है। यहाँ पर दुष्यन्त की उक्ति स्मरणीय है:- 'अनपत्यश्च किल तपस्वी। राजगामी तस्यार्थसंचय इति एतद् अमात्येन लिखितम्। **कष्टं खल्वनपत्यता।** बहुधनत्वाद् बहुपत्नीकेन तत्रभवता भवितव्यम्। विचार्यातम् यदि काचिद् आन्नसत्त्वा तस्य भार्यासु स्यात्।' महाकवि कालिदास को यहाँ दुष्यन्त को शकुन्तला की आपन्नसत्त्वावस्था का स्मरण दिला कर पश्चाताप में डालना तो अभिप्रेत होगा ही, लेकिन उनको अपनी अनपत्यता का भी स्मरण देना अभीष्ट होगा, क्योंकि इस नाटक के आरम्भ में दुष्यन्त को चक्रवर्ती पुत्र की प्राप्ति होगी, ऐसे आशीर्वचन दिये गये हैं और वही है इस नाटक का अन्तिम लक्ष्य (द्विवेदी, कालिदास ग्रन्थावली (भाग-२))[१३]।

इसीलिये षष्ठाङ्क में, धनमित्र के प्रसंग से राजा दुष्यन्त की अनपत्यता का स्मरण ध्वनित करके कवि ने इस नाटक के चरम लक्ष्य को प्रेक्षकों के सामने रखा है। यहाँ एक ध्यानास्पद बिन्दु यह है कि- नाटक के गन्तव्य को महाकवि ने प्रत्येक अङ्क में किसी न किसी स्वरूप में निर्दिष्ट भी किया है जैसे कि:- प्रथमाङ्क में 'सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रम् अवाप्नुहि' शब्दों से वैखानस के आशीर्वचन दिये जाते हैं और सप्तमाङ्क में चक्रवर्ती राजा के लक्षणों से युक्त सर्वदमन भरत की प्राप्ति दिखाई गई है। तृतीयाङ्क में नायक-नायिका का गान्धर्व-विवाह होता है और चतुर्थाङ्क में कण्वमुनि कहते हैं कि दुष्यन्त-पुत्र को राज्य की धुरा सोंप के इस आश्रय में फिर से वापस आना। पंचमाङ्क के अन्त में, शकुन्तला-प्रत्याख्यान प्रसंग में राजपुरोहित कहता है कि- त्वं साुधभिरुद्दिष्टः प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रम् जनयिष्यति इति। (शाकु. ५/२९ के बाद) और षष्ठाङ्क में सार्थवाह धनमित्र के

पूर्वोक्त प्रसंग के द्वारा दुष्यन्त की अनपत्यता व्यजिंत की जाती है। किन्तु देवनागरी वाचना और दाक्षिणात्य वाचना वाले **शाकुन्तल के द्वितीयाङ्क** में कहीं पर भी पुत्रप्राप्ति रूप नाट्यकार्य का किसी भी तरह से निर्देश नहीं है। दुष्यन्त की रानियों ने जो उपवास किये थे, उसका कोई उद्देश्य वहाँ नहीं कहा गया है। यहाँ पर देवनागरी और दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार 'प्रवृत्तपारण' या 'निर्वृतपारण' उपवास का ही निर्देश है।[१४] केवल बंगाली, मैथिली और काश्मीरी वाचना के शकुन्तल में ही पुत्रपिण्डपालन, पुत्रपिण्डपर्युपासन एवं पुत्रपिण्डाराधन जैसे पाठभेद वाले शब्दों से पुत्र-प्राप्ति रूप लक्ष्य का निर्देश मिलता है। इन पाठ भेदों का तुलनात्मक अभ्यास करने से भी यह सिद्ध होगा कि देवनागरी और दाक्षिणात्य वाचना का पाठ संक्षिप्त करने के साथ-साथ परिवर्तित भी किया गया है। इसीलिये बंगाली वाचना के पुत्रपिण्डपालन वाले पाठ में नाटक के चरम लक्ष्य का निर्देश सुरक्षित है, परन्तु वह निर्देश देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचना से गायब हो गया है। इस तरह बंगाली वाचना के पाठ की मौलिकता की सम्भावना उपर्युक्त एक छोटे से पाठभेद से भी दृढ़तर सिद्ध होती है।

५. संस्कृत नाट्य-साहित्य में भास, कालिदास, शूद्रक, कुन्दमालाकारादि अनेक कवियों ने प्रेमोद्भव के एक बीजभूत कारण के रूप में अनुक्रोश नामक गुण को पुरस्कृत किया है। यद्यपि संस्कृत-कोशकारों ने इस शब्द का दया, अनुकम्पा, घृणा, सहानुभूति जैसे अर्थों का परिगणन किया है, किन्तु उसका सही अर्थ तो 'परदु:खदु:खिता ही होता है।[१५] दूसरों के दु:ख को देख कर, उस दु:खी जन की साहायता करने को जो तुरन्त उद्यत होता है तो वह व्यक्ति सानुक्रोश है—ऐसा कहा जाता है। ऐसी सानुक्रोशता को देख कर कुसुम-सुकुमारचित्तवाली नारियों के हृदय में प्रेम की भावना सद्य: प्रकट होती है। अत: महाकवि कालिदास जब अपनी इस नाट्य कृति में अनुक्रोश शब्द का प्रयोग करते हैं तो उसका भी परीक्षण करके देवनागरी शाकुन्तल के पाठ की आलोचना की जा सकती है।

५.१ देवनागरी वाचना वाले अभिज्ञानशाकुन्तल के सप्तामाङ्क में दुष्यन्त शकुन्तला के पाँव पड़ता है (और ७/२४ श्लोक बोलता है), यहाँ शकुन्तला कहती है कि—उत्तिष्ठत्वार्यपुत्र:। नूनं मे सुचरितप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणाममुखम् आसीद्, येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि विरस: संवृत्त:। यहाँ शकुन्तला ने कहा है कि दुष्यन्त एक सानुक्रोश व्यक्ति है, लेकिन मेरे सुचरित को रोकने वाला गत् जन्म का कोई कर्म उस समय फल देने के लिये तत्पर हो गया था, जिसके कारण आर्यपुत्र सानुक्रोश होते हुए भी मेरे प्रति विरस हो गये थे। यहाँ

दुष्यन्त के लिये प्रयुक्त सानुक्रोश शब्द, जो समग्र संस्कृत साहित्य में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शब्द है[१६], उसका औचित्य कैसे सिद्ध किया जा सकता है। वह परीक्षणीय है।

शकुन्तला की उपयुर्क्त उक्ति को सुन कर यह प्रश्न किया जा सकता है कि ''दुष्यन्त एक सानुक्रोश व्यक्ति है'' ऐसा अनुभव शकुन्तला को कब हुआ होगा? दुष्यन्त और शकुन्तला का सहचार तो केवल प्रथम एवं तृतीय–ये दो अंङ्कों में ही वर्णित हुआ है। १. प्रथमाङ्क के भ्रमरबाधा प्रसङ्ग में दुष्यन्त शकुन्तला को भ्रमर के त्रास से छुड़ाने के लिये जब सहसा प्रस्तुत होता है एवं वृक्षसेचन के लिये दो घट पानी के ऋण में से मुक्त करवाने के लिये जब दुष्यन्त ने अपनी राजमुद्रा निकाल कर दी थी। २. देवनागरी वाचना के तृतीयाङ्क में नायक–नायिका का सहचार/सहवास परिसीमित क्षणों में पूरा होता है। अतः इस अल्पकालिक मिलन में शकुन्तला को किसी बाधा से छुड़ाने का मौका दुष्यन्त को मिला ही नहीं है। इसलिये सप्तमाङ्क में जब दुष्यन्त के लिये सानुक्रोश शब्द का प्रयोग होता है, तब वह समुचित नहीं लगता है। किन्तु बंगाली वाचना के तृतीयाङ्क के पाठ को यदि मौलिक मानते हैं, तो वहाँ एक निश्चित प्रसङ्ग है जिसमें दुष्यन्त ने शकुन्तला को प्रत्यक्ष रूप से बाधामुक्त की है। शकुन्तला ने अपने कानों में जो उत्पलपुष्प आरोपित किया था, उसकी रेणु से नेत्र जब कलुषित होता है तब दुष्यन्त ने अपने वदनमारुत से उसका प्रमार्जन किया था। और शकुन्तला ने भी दुष्यन्त को अनुकम्पा प्रदर्शित करने वाले शब्द कहे हैं[१७]। इस तरह बंगाली वाचना के पाठ को यदि हम ध्यान में लेकर सप्तमाङ्क के सानुक्रोश शब्द के प्रयोग का औचित्य सोचते हैं तो वह सुसंगत लगता है। परन्तु देवनागरी वाचना के संक्षिप्त पाठ के सन्दर्भ में इस महत्त्वपूर्ण शब्द के प्रयोग का औचित्य जमता नहीं है।

उपसंहार

पाठालोचना में इदं प्रथमतया पाण्डुलिपियों का साक्ष्य ही महत्त्व रखता है। उपलब्ध पाण्डुलिपियों में संचरित हुए पाठों का तुलनात्मक अभ्यास करके, वंशवृक्ष-पद्धति से विभिन्न वाचनाओं में से कौन सी वाचना प्राचीन या प्राचीनतर है–उसका निर्णय किया जाता है। तदन्तर, कौन से पाठ को बहुसंख्य पाण्डुलिपियों का समर्थन मिलता है अथवा प्राप्त की गई अनेकानेक पाण्डुलिपियों में से जो प्राचीनतम पाण्डुलिपि होगी उनमें कौन सा पाठ सुरक्षित रहा है–ऐसा आधुनिक पाठसम्पादक सोचते हैं। इस दृष्टिकोण से जो समीक्षित पाठसम्पादन किया जाता है, उसमें वस्तुनिष्ठता जरूर होती है। क्योंकि यहाँ पर जैसा भी निर्णय किया जाता

है, वह उपलब्ध हुई पाण्डुलिपियों (की संख्या या प्राचीनता) पर निर्भर रहता है। परन्तु अनेकविध पाठान्तरों में से कौन सा पाठान्तर अधिक काव्यत्व पूर्ण हो सकता है? उसको पसंद करके अर्थात् गुणोपसंहार न्याय से जो समीक्षित पाठसम्पादन तैयार किया जाता है, उसमें आत्मलक्षिता प्रविष्ट होती ही है। परिणामस्वरूप ऐसा समीक्षित पाठसम्पादन सर्वसम्मत नहीं होता है। लेकिन जिस पाठसम्पादन को वस्तुनिष्ठ कहा गया है उसमें पाठालोचन के तीन सोपान ही कार्यान्वित किये गये होते हैं। अतः वहाँ चतुर्थ सोपान पर उच्चतर पाठसमीक्षा का कार्य अवशिष्ट रहता है। यहाँ वंशवृक्ष पद्धति से जो भी वाचना को प्राचीनतर या अधिक श्रद्धेय मानकर, उसके आधार पर पाठसम्पादन किया जाता है, उसका पुनःपरीक्षण किया जाता है। ऐसे पुनःपरीक्षण में बाह्य-साक्ष्य एवं कृतिनिष्ठ आन्तरिक सम्भावना को सर्वोच्च मानदण्ड के रूप में स्वीकारा जाता है। प्रस्तुत आलेख में, बंगाली वाचना के प्रक्षिप्त माने गये बृहत् पाठ को ,कृति के ही अन्तःसाक्ष्य से कैसे समर्थन मिल रहा है, उसकी चर्चा की गई है। देवनागरी वाचना के तृतीयाङ्क एवं षष्ठाङ्क के ऐसे अनेक सन्दर्भ हैं, जिसका सम्बन्ध बंगाली वाचना के तृतीयाङ्क के बृहत् पाठ के साथ ही बैठ सकता है–ऐसा यहाँ प्रस्थापित किया गया है। आशा है कि सहृदय पाठक इस विषय पर दोबारा सोच कर अपनी सम्मति या विप्रतिपत्ति प्रकट करेंगे।

---

१. It it the Abhijnanasakuntala that the Indological world is both united and divided. (Preface-page : 1), Dr. Dileep Kumar Kanjilal, Sanskrit College, Calcutta, (1980). [Bangali Recension is a accepted as the genuine]

२. कालिदास-ग्रन्थावली, सं. रेवाप्रसाद द्विवेदी, काशी हिन्दू वि.वि., वाराणसी, १९८६ में (१) देवनागरी वाचना का समीक्षित पाठ, (२) अभि. शकुन्तल, सं.डॉ. एस.के. बेलवालकर, साहित्य अकादेमी, दिल्ली, १९६५ में काश्मीरी वाचना का समीक्षित पाठ, (३) अभि.शाकु. काटयवेम की टीका के साथ, सं. चेलमचेर्ल रंगाचार्य, आन्ध्रप्रदेश संस्कृत अकादेमी, हैदराबाद, १९८२ में दाक्षिणात्य वाचना का समीक्षित पाठ, (४) शकुन्तल, सं. रिचार्ड पिशेल, हार्वर्ड युनि. प्रेस, १९२२ में बंगाली वाचना का समीक्षित पाठ, (५) अभि.शकु.,सं. रमानाथ झा, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, १९५७ में मैथिली वाचना का समीक्षित पाठ प्रकाशित है।

३. द्रष्टव्यः- कालिदासः अपनी बात। डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी, कालिदास संस्थान, वाराणसी, २००४, पृ. ५५-५६.

४. निसर्ग-कन्या शकुन्तला। डॉ. एस.के. बेलवालकर, कालिदास-ग्रन्थावली, (अनुवादकः सीताराम चतुर्वेदी) के परिशिष्ट में पुनः प्रकाशित आलेख, १९५३.

५. बंगीय पाठ में प्रथम मिलन में ही शकुन्तला अठखेलियाँ करती दिखाई गई हैं, जो कालिदास की प्रवृत्ति से विरुद्ध है।। कालिदासः अपनी बात (भारतीय दृष्टि) डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदीजी, कालिदास संस्थान, वाराणसी, २००४, पृ. ५४.

६. We have already established beyond doubt that the whole of the elaborate's rigaric version formed an integral part of the drama long before the 12th century A.D.- Dr. Dileep Kumar Kanjilal, p. 128.

७. कार्येति। अनेन पद्येनाश्रमस्थं पूर्वानुभूतं तदानींतनम् उद्दीपनं विभावगणं स्मरति। -अभिज्ञानशाकुन्तलम् (राघवभट्टस्य टीकया सहितम्)। सं. नारायण राम आचार्य, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नयी दिल्ली, २००६, (पृ. २१२)।

८. राजा - सुन्दरि, कर्णोत्पलसंनिकर्षाद् ईक्षणसादृश्यमूढोऽस्मि। (इति मुख्मारुतेन चक्षुः सेवते)। पृ. ४०

९. राजा - (सस्मितम्) यदि मन्यसे अहमेनाम् वहनमारुतेन विशदां करिष्यते। अभिज्ञानशकुन्तलम्। सं. रिचार्ड पिशेल, हार्वडे युनि. प्रेस. पृ. ४०।

१०. शकुन्तला - अअं जेव अच्चुवचारों अविस्सासजणओ। (अयमेव अत्युपचारः अविश्वासजनकः)। (अभि.शकु.,रिचार्ड पिशेल, पृ. ४०)।

११. The element of time involved in the whole process has been discussed threadbare by Prof. Belvalkar. The transition form अनिर्वाणो दिवसः। to वत्से, परिणतो दिवसः। appears in the retrenched edition to have been covered by a few moments only, but literary propriety and relevance demand that a number of events must be brought in to fill up the gap between afternoon and evening. The love elaboration of the Bengali-Mithila-Kashmir recensions may be justified from the standpoint of time-propriety too.- A reconstruction of the Abhijnanas'akuntalam, Ed. Dileep Kumar Kanjilal, Sanskrit College, 1980, Page-127.

१२. (प्रविश्य पात्रहस्ता गौतम) जाते, इदम् शान्त्युदकम्। (दृष्ट्वा) अस्वस्था इह देवतासहायिनी तिष्ठसि।।, शकुन्तला-इदानीमेव प्रियंवदानसूये मालिनीम् अवतीर्णे। रिचार्ड पिशेल की आवृत्ति, (पृ. ४१)।

१३. इदमेव प्रयोजनमेतस्य नाटकोत्तमस्येत्यभिनवगुप्तो नाट्यशास्त्रविवृतावभिनवभारत्यां १९-२२ कारिकायां घनश्यामश्च। अत एव सार्थक्यं षष्ठसत्पमांकयोः।। -कालिदास-ग्रन्थावली (द्वितीयो भागः), अनु. रेवाप्रसाद द्विवेदीजी, कालिदाससंस्कृत अकादमी, उज्जैन, २००८, पृ० ३१८.

१४. राघवभट्ट की टीका में - देव्याज्ञापयति- आगामिनि चतुर्थदिवसे प्रवृत्तपारणो मे उपवासो भविष्यति। तथा काटयवेम की टीका में -देव्याज्ञापयति-आगामिनि चतुर्थदिवसे निर्वृतपारणो मे उपवासो भविष्यति। ऐसे पाठान्तरों को स्वीकार किया गया है।।

१५. एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे, सौहार्दाद् वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या।। -मेघदूत-५५

१६. जो करुणा होती है वह ईश्वर की होती है, और जो सहानुभूति होती है वह साधुपुरुष की होती है। इस करुणा और सहानुभूति के बीच में अनुक्रोश आता है तथा अनुक्रोशत्व के कारण प्रेमोद्भव होता है-ऐसा संस्कृत कवियों ने बार-बार दिखाया है।

१७. शकुन्तला-न तावत् एनम् प्रेक्षे। पवनोत्कम्पिना कर्णोत्पलरेणुना कलुषीकृता मे दृष्टिः।। राजा-यदि मन्यसे अहमेनां वदनमारुतेन विशदां करिष्ये।। शकुन्तला-ततो अनुकम्पिता भवेयम्।। (रिचार्ड पिशेल आवृत्तिः, पृ० ४०)